ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-6* September-2020
Anthology : The Research

इस्लाम के प्रवेश के बाद ग्रामीण समाज का बदलता स्वरूप

Changing Nature of Rural Society After The Entry of Islam

Paper Submission: 15/09/2020, Date of Acceptance: 26/09/2020, Date of Publication: 27/09/2020

कुमार शरद
अध्यापक,
इतिहास विभाग
मॉडल हाई स्कूल
मुंगेर, बिहार, भारत

सारांश

अपनी प्राकृतिक संरचना के अनुरूप भारत एक ग्राम प्रधान देश रहा है। आदिम काल से लेकर आज तक यहाँ की सामाजिक संरचना में गाँवों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। समाज की संरचना में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत की अर्थ व्यवस्था मूलतः कृषि पर आधारित रही है। कृषि से ही समाज का पोषण होता है। भारत की सभ्यता एवं संस्कृति का मूलाधार कृषि ही रहा है। समय–समय पर इस देश में जिस नगरीय संस्कृति का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ, इसका स्रोत गाँवों से ही जुड़ा हुआ था। प्राचीन काल ही नहीं मध्य कालीन भारत में भी यहाँ के गाँवों का अपना महत्व था। इस काल में भी भारत के अर्थतंत्र का मूलाधार कृषीय (Agrarian) ही था। कृषि से ही जीवन की जरूरतों की पूर्ति होती थी।

India has been a village dominated country in its natural structure. From primitive times till date, villages have played an important role in the social structure here. Meaning has an important role in the structure of society. India's economy has been basically based on agriculture. Society is nourished only by agriculture. Agriculture has been the foundation of India's civilization and culture. From time to time, the urban culture that grew and developed in this country, its source was connected to the villages only. The villages here had their own importance not only in ancient times but also in Central India. Even in this period, the basis of India's economy was agricultural (Hantapand). The needs of life were met only by agriculture.

मुख्य शब्द : श्कश्रिरी, बेना, शन्दाल, ठोम, कर्हाडे, देशस्थ।
Shkshiri, Bena, Shandaal, Thom, Karhade, Deshastha.

प्रस्तावना

मध्यकाल में इस्लामी शक्तियों के आने के पूर्व हिन्दू मध्य कालीन (राजपूत काल) भारत में हमें ग्राम सभ्यता की लम्बी श्रृंखला मिलती है। यह सामंती सभ्यता का काल था, फिर भी गाँवों में जनता की स्वतंत्रता काफी कुछ सुरक्षित थी। इस काल में ग्राम संस्थाओं का विकास शासन की लघुतम इकाई के रूप में हुआ था। इस ग्राम संस्थाओं की अपनी व्यवस्थित परम्परायें थीं, जो प्रायः राजसत्ता के बदलते परिवेश से अप्रभावित रहती थीं। मध्य युगीन भारत छोटे बड़े राज्यों में बंटा था, जिनकी सीमायें घटती बढ़ती रहती थी। पर ग्राम संस्थायें इनमें अप्रभावित रहती थी। इस काल में ग्राम संस्थाओं का जिस रूप में विकास हुआ, इसका भारतीय इतिहास में बड़ा महत्व है। मध्यकाल की अराजकता पूर्ण सामंती व्यवस्था में भी बहुत सी ग्राम संस्थायें जनहित में कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस काल के अनेक शिलालेख व ताम्रपत्रों से ग्राम संस्थाओं के क्रिया कलापों की जानकारी मिलती है। दक्षिण भारतीय अभिलेखों से ग्राम–सभाओं का ज्ञान होता है। ये ग्राम सभायें अपने क्षेत्र का शासन ही नहीं अन्य सांस्कृतिक कार्य भी करती थीं। ग्राम शासन का सब अधिकार ग्राम–सभा के हाथों में होता था, जिसकी अध्यक्षता ग्रामीण करता था। ग्राम–शासन की सुविधा के लिए अनेक समितियाँ होती थीं। ग्राम सभा के अधिकारियों का कर्तव्य होता था कि वे राजकीय करो को वसूल करें, उनका हिसाब रखें और एकत्र धन को राजकोष में पहुँचा दें। उल्लेखनीय है कि दक्षिण के चोल राज्य में शासन की इकाई ग्राम होते थे, जो छोटे–छोटे राज्यों के समान थे और वे अपना शासन स्वयं चलाते थे। समकालीन उत्तरी भारत में ग्राम

सभाओं की अपनी व्यवस्थायें थीं, पर वे दक्षिण भारत से भिन्न थीं। यहाँ पर ग्रामों की जनता अपने साथ संबंध रखने वाले मामलों की व्यवस्था अपनी ग्राम सभाओं द्वारा कराती थी। सामंती राज्यों में युद्ध आदि चलते रहते थे, और सत्ता का परिवर्तन होता रहता था, पर वहाँ के सर्व साधारण जनों पर उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। ग्रामों में ग्राम सभायें यथावत चलती रहती थीं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस्लाम के प्रवेश के बाद ग्रामीण समाज के व्यवसाय एवं वर्ण संकर जातियों का उदय होना इस काल की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से था। व्यवस्था के रूप में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार तो रहा ही साथ ही अन्य व्यवसायों का भी विकास जैसे–बढ़ई, घातुकार, काछी, माली, तेली, नाई, नट, गायक, विखक आदि अनेकों जातियाँ वर्ण व्यवस्था से हटकर विकसित हुई। व्यवसायिक जातियाँ भी उपजातियाँ, वर्ग, उपवर्ग, में भी उत्पन्न होते गये। इस प्रकार मुसलमानों का आगमन व्यवसाय एवं जाति के विकास का एक प्रतिरूप लेकर आया।

विषयवस्तु

हिन्दू मध्य कालीन भारत में विकसित ग्राम संस्थायें मुस्लिम मध्काल में ही नहीं बनी रही अपितु अंग्रेजों के काल में भी काफी कुछ चलती रहीं। इस विषय में सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा है कि ''ग्राम संस्थायें छोटे–छोटे लोकतंत्र राज्यों जैसे थे, जो अपने आपमें पूर्ण थे। उन्हें जो कुछ भी चाहिए था, वह उनके अपने अंदर मौजूद था। अपने से बाहर के साथ उनका संबंध बहुत कम था। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ अन्य कोई नहीं बचा, वहीं बची रही। एक राजवंश के बाद दूसरा राजवंश आया। एक क्रांति के बाद दूसरी क्रांति हुई पर ग्राम संस्थायें पूर्ववत वहीं कायम रही। जिनमें से प्रत्येक एक पृथक राज्य की तरह हैं, भारतीय जनता की रक्षा में सबसे अधिक समर्थ रहीं। इन्हीं के कारण सब परिवर्तनों और क्रांतियों में जनता की रक्षा होती रही। भारतीयों को जो कुछ प्रसन्नता व स्वतंत्रता आदि प्राप्त है,उसमें ये ही सबसे अधिक सहायक है।[1] ''इन ग्राम संस्थाओं का मुस्लिम मध्यकाल में काफी कुछ महत्व था। अरबों और तुर्को ने अपने प्रारंभिक शासन काल में यहाँ की ग्राम–संस्थाओं एवं उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं किया।

मध्यकालीन गाँव कृषकों से आबाद थे। मोरलैण्ड के अनुसार इन कृषकों से तात्पर्य उस वर्ग से है जिनका अपने लोग के लिए अपने परिवार वालों या मजदूरों की सहायता से खेत जोतता हो, चाहे उसकी भूमि पर स्वामित्व या स्थायित्व की शर्ते किसी प्रकार की क्यों न हो।[2] इस काल में इन किसानों की कई श्रेणियाँ थी। पहली श्रेणी धनी किसानों की थी, जो मजदूरों की सहायता से कृषि करते थे। दूसरी श्रेणी उन किसानों की थी जो अपने परिवार के श्रम की सहायता से कृषि करते थे और तीसरी श्रेणी उन किसानों की थी, जिनके पास भूमि इतनी कम होती थी कि उन्हें कृषि के लिए परिवार के श्रम की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। ये दूसरों की जमीन पर खेतीकर जीविका चलाते थे। अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में किसान पाँच श्रेणियों में थे, भू–मालिक, धनी किसान, मध्यम किसान, गरीब किसान, कृषक मजदूर। इस काल में कृषि में अद्भुत प्रगति हुई। प्रो. राधेश्याम लिखते हैं कि ''कृषि प्रधान देश में कृषि अर्थव्यवस्था का विकास इतनी तीव्रता से इससे पूर्व नहीं हुआ, जितना 13वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक हुआ। इन तीन शताब्दियों में ग्रामीण समाज के अंदर के ढाँचे में यद्यपि गहन परिवर्तन नहीं हुए किंतु समाज के विविध वर्गो के अधिकारों की परिभाषा बदलते ही, आंतरिक एवं बाह्य दबाव में ग्रामीण समाज की अर्थ व्यवस्था एवं आर्थिक संगठन में जो विकास हुआ वह नवीन दिशा में था। अभी तक शासकों के कोषों में तथा हिन्दू मंदिरों में सदियों तक धन छिपा रहने के कारण उत्तरी भारत का आर्थिक विकास रूका हुआ था। मुसलमान विजेताओं ने मुहम्मद गोरी के समय से लेकर अगले 100 वर्षो में यह धन मंदिरों व राजाओं के कोष से निकाल कर उसका सभी वर्गो द्वारा उपयोग होने दिया। कृषकों ने कृषि उत्पादन अथवा विविध खाद्यान्नों, तेलहन, जूट, मलबरी के पौधें तथा कपास की खेती में अपना योगदान दिया। किंतु साथ ही साथ इस काल में कृषि गृह उद्योगों या कुटीर व लघु उद्योगों से जुड़ी रही। इस काल में कृषकों के पास कच्चामाल था उनके परिवार में श्रम था और आर्थिक क्रिया के लिए समुचित साधन व परिस्थितियाँ उपलब्ध थी।[3] इस काल की 90 प्रतिशत जनता की जीविका कृषि पर आधारित थी। उनका मुख्य व्यवसाय कृषि था। इस कृषि से ही खाद्यान्न व लघु उद्योगों के लिए कच्चा माल उत्पादित होता था। ये ग्रामीण उद्योग बड़े पैमाने पर न होकर छोटे पैमाने पर थे। इन कृषिगत उद्योगों में एक ही परिवर के लोग पीढ़ी दर पीढ़ी लगे रहते थे। इन कारीगरों के औजार आदि पुराने थे और उनके कार्य का ढंग परम्परागत था। उन्हें शासन से कोई आरक्षण न प्राप्त था। समाज के सम्पन्न लोगों द्वारा उनका शोषण होता था। गाँव में मुसलमान शिल्पकारों के आने पर भी कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। मुस्लिम शिल्पकार वर्ग भेद के शिकार हो गये। मध्यकाल के प्रारंभिक ग्रामीण समाज में मुसलमानों की संख्या कम थी। समय के साथ यह संख्या बढ़ी। हिन्दू और मुसलमानों यहाँ के ग्रामीण समाज के अंग बन गये।

ग्रामीण समाज की सरंचना में वर्ण, वर्ग एवं जाति

इस काल में समाज की बहुल संख्या गाँव में रहती थी। कृषि समाज की आजीविका का प्रमुख साधन था। ग्रामीण समाज के रचना परम्परागत वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। ये चार वर्ण थे–ब्रह्मण, क्षत्रिय वेश्य एवं शूद्र। वर्ण कर्मणा न होकर जन्म ना था, अर्थात् जो जिस वर्ग में जन्म लेता था वही उसका वर्ण माना जाता था। वर्ण अब जातियों में बदल गये थे, कार्य एवं व्यवहार के कारण इन जातियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। मुस्लिम, भूगोल विद् इब्न–खुरदादबा ने अपनी कृति 'किताबुल मसालिक मुमाकिलक' में लिखा कि भारत में 7 जातियाँ थी– (1) श्कश्रिरी (क्षत्रिय) जो कि यहाँ के उमरा हैं। इन्हीं में से शासक होते हैं। उसके सम्मुख सभी झुकते हैं। किंतु वे किसी के सम्मुख नहीं झुकते हैं। (2) ब्रह्मीय (ब्राह्मण) जो कि मदिरा पान नहीं करते, (3) क्षत्री (खत्री)

जो कि एक से लेकर तीन प्याले तक मदिरा पान करते हैं। ब्राह्मण उनकी कन्याओं से विवाह तो करते है किंतु उन्हें विवाह में अपनी कन्याएँ नहीं देते हैं, (4) शूदार (शूद्र) कृषक, (5) बेना (वैश्य) जो कि विभिन्न व्यवसाय करते हैं, (6) शन्दाल (चाण्डाल) नट, (7) ढोम (जो कि व्यवसायिक गायक है तथा जिनकी स्त्रियाँ सजधज कर रहती हैं। इसी प्रकार मोरक्कों के अल–इद्रसी ने भी यहाँ के इन जातियों का उल्लेख अपनी कृति नुजहतुल मुश्ताक की 'इख्ताराकुल अफाक' में किया है। हिन्दू समाज की यह जात प्रथा कार्य एवं व्यवसाय पर आधारित थी। वर्ण व्यवस्था के अनुसार हिन्दू समाज चार वर्णो में विभाजित था। समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार इन वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन होता जा रहा था।)

परम्परा से चार वर्ण थे, जिन्हें समाज में चार वर्ग माना जाता था। पर मध्यकाल में वास्तविक वर्ग, व्यवसाय परक जातियाँ हो गई थीं। वर्णो एवं वर्गो के मिश्रण से भी बहुत सी जातियों की रचना हो गई थी और इन जातियों में भी अनेक उपजातियाँ की रचना हुई। प्रमुख वर्णों से भी बहुत सी उपजातियाँ क्षेत्र, व्यवसाय एवं सम्प्रदायों के कारण बनी। ब्राह्मण 10 वर्गों में विभाजित हुए, जिनमें 5 गौड़ और 5 द्रविण हैं। ये 10 ब्राह्मण श्रेणियाँ कतिपय वर्गो एवं उपजातियों में विभाजित हुए। द्रविण ब्राह्मणों में महाराष्ट्री, चितपावन, कर्हाडे, देशस्थ व देवरुखे जैसी उपजातियों में विभाजित हैं। गुजरात के ब्राह्मणों में 84 उपजातियाँ मिलती हैं। पंजाब के सारस्वत 470 उप भागों में विभक्त है। कान्यकुब्जों के सैकड़ों उप विभाग हैं। पूर्वी ब्राह्मण (मागध) ऊँचे नहीं माने जाते। इसी प्रकार क्षत्रियों की भी अनेक उपजातियाँ इस काल में मिलती हैं, जैसे सूर्यवंशी, चंद्रवंशी और अग्निकुलीय आदि। क्षत्रियों में परमारों के 35, गुहिलोतो के 24, चाहमानो के 26 व सोथाध्यों की 16 शाखाएँ मिलती है। इसी प्रकार वैश्य तथा शूद्रों जैसे वर्णो में तो अनेक क्षेत्रिय, व्यवसाय परक जातियाँ मिलती हैं। अरबो व तुर्की के आने के साथ, भारतीय समाज में एक नये मुस्लिम वर्ग ने प्रवेश किया। और धर्म परिवर्तन के साथ भारतीय मुसलमानों की संख्या समाज में बढ़ी।

ग्रामीण समुदाय के रूप में ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत – मध्यकालीन गाँवों में प्रत्येक बिरादरी की भी अपनी अपनी पंचायतें होती थी, जिसके सदस्य परिवारों के प्रमुख होते थे। वे ही अपने में से पंच चुन लेते थे। उनकी पंचायत का प्रमुख सरपंच होता था। बिरादरी की किसी भी समस्या का निराकरण, बिरादरी की पंचायत ही करती थी और सरपंच का निर्णय बिरादरी के लोगों को मान्य होता था। देखा जाय जो सारा गाँव अपने आप में स्वायत एवं आत्मनिर्भर होता था। सारा गाँव एक ग्रामीण समुदाय के रूप में होता था, और बिरादरी गत अपने समुदाय थे। डॉ. इरफान हबीब इस विषय में सोचते हैं कि ''मेरा ऐसा विचार है कि उत्पादन से बाहर भी कुछ क्षेत्र थे, जिनमें सामान्यतः एक ही बिरादरी के गाँव के किसान प्रायः सामूहिक रूप से काम करते थे और सामूहिक कार्यकलाप के लिए उन्होंने जो सामूहिक संस्था बनाई उसका नाम था ग्राम समुदाय''। उन्होंने ग्राम समुदाय की उत्पत्ति पर लिखा है कि ''किसानों के जातिगत सामंजस्य और श्रमिकों के वंशानुगत विभाजन से ग्राम की आत्म निर्भरता की आवश्यकताओं का जो अनुभव किया गया उससे ग्राम समुदाय की उत्पत्ति हुई। यद्यपि ग्राम शहरी बाजार के लिए माल उपलब्ध कराते थे किंतु अपनी दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामों को कुछ नहीं मिलता था। अतः ग्राम ने अपने को एक आत्म निर्भर एक के रूप में संगठित किया। इसी प्रकार किसानों के जातिगत सामंजस्य ने भी एक संगठित संस्था के बनने में मदद की। उत्तर के विगोत्रीय वैवाहिक समूहों की तुलना में दक्षिण भारत के सगोत्रीय वैवाहिक समूहों के साथ यह बात और भी लागू होती है। ऐसा निष्कर्ष निकालना संभवतः गलत नहीं होगा कि ग्राम समुदाय की उत्पत्ति के लिए समाज शास्त्रीय, आर्थिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक कई कारक उत्तरदायी हैं।[4]

समाज में वर्गजात जातियाँ – समाज के परम्परागत वर्ग व्यवस्था में अनेक प्रकार की जातियों का प्रादुर्भाव इस काल में हुआ था। मध्यकाल में कम से कम 34 प्रकार के ब्राह्मण, 36 प्रकार के क्षत्रिय, 84 प्रकार के वणिक् और अनेक प्रकार के शिल्पीधर्मी पेशेवर जातियाँ देखने को मिलती हैं। इसी प्रकार इस काल में वर्ण संकर जातियों की संख्या भी पर्याप्त संख्या में बढ़ी। इसी काल में लिखित 'चन्दायन' में हिन्दुओं की विभिन्न जातियों का उल्लेख हमें इस प्रकार मिलता हैं– ''बाम्मन अर्थात् ब्राह्मण, खतरी, क्षत्रिय, गौर, ग्वाला, गहरवार अर्थात् गहड़वाल, 'राजपूत', अगरवाल 'अग्रवाल', वैश्व, तिवारी ब्राह्मणों की एक उपजति, हजमनान 'हजाम या नापित' गंधई जो इत्र या सुगन्धित तेल बेचता है, सोनी सोनार और ठाकुर क्षत्रियों की एक उपाधि।[5] इसी प्रकार 14वीं शताब्दी में लिखे गए 'वर्ण रलागर' में हिन्दू समाज की निम्न श्रेणी की जातियों का उल्लेख मिलता है यथा तेली, तांती, बुनकर, धुनिया, धनुक, हादी, चन्दार 'चण्डाल' चमार 'मोची' आदि।[6]

मध्यकालीन भारत में परम्परागत वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत अनेकानेक जातियो, उप–जातियों का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ था। इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक अन्यनव जातियों का प्रदुर्भाव हुआ जो वर्ण व्यवस्था से परे थी। निकोलो कौन्टी की सोच है कि मध्यकालीन भारत में 84 जातियाँ थीं। जबकि अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य व्यावसायिक वर्गों के अतिरिक्त इस काल में 36 जातियाँ थीं।[7] राधेश्याम लिखते हैं कि व्यवसायिक वर्गों में मंदिरा बनाने वाले कल्लाल, स्वर्णकार, जुलाहे, पान बेचने वाले, लोहार, गडरिये, दूध बेचचे वाले, बढ़ई, धातुकार, भाट, अहीर, कुम्हार, काछी, माली, तेली, नाई, नट, गायक, विखक, नर्तक, रंगरेज, छपाई करने वाले तथा अनेक विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोग थे जिनकी गणना करना सुलभ नहीं। इस काल में विभिन्न उद्योगों में निरंतर परिवर्तन होने के कारण तथा श्रम की गतिशीलता तथा कुशल कारीगरी में विकास के परिणाम स्वरूप व्यावसायिक जातियों में भी उपजातियाँ, वर्ग, उपवर्ग उत्पन्न होते गये। एक प्रदेश व स्थान में निरंतर निवास करने के कारण कालांतर में एक ही समुदाय के व्यक्तियों की एक जाति बन गई, दूसरे स्थान व प्रदेश में किसी व्यवस्था में कुशलता एवं प्रवीणता के

आधार पर जाति बन गई, तीसरे प्रदेश या स्थान में हिन्दू व मुसलमानों में पारस्परिक संबंधों के कारण नवीन जातियाँ व उप जातियाँ बन गई। अंतर्जातिय विवाह, स्थानीय रीति–रिवाजों तथा अन्य कारणों से भी नवीन जातियों व उप जातियाँ बनती रहीं। विशिष्ट एवं विशेष अधिकारों से युक्त उत्तम जातियों के नीचे जन समुदाय का एक विशाल वर्ग जिसमें करोड़ों अछूत आते थे, उनमें भी धीरे–धीरे नयी जातियाँ, उप जातियाँ व्यवसाय के आधार पर उत्पन्न हुई। इस प्रकार के भी जाति के आधार पर विभाजित हो गए।

निष्कर्ष

मध्यकालीन ग्राम–समुदाय की व्यवस्था का अपरिवर्तित होना एवं साथ ही मुस्लिम शासकों द्वारा उसमें बिना हस्तक्षेप के जारी रखना महत्वपूर्ण था। इसी परिदृश्य में समाज की बहुत संख्या गाँव में रहते हुए कृषि को अपना मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया। ग्रामीण समाज की रचना परम्परागत वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त उसमें बहुत सी उपजातियाँ क्षेत्र, व्यवसाय एवं सम्प्रदायों के कारण बनती गई और वर्ण–संकर जाति एवं सम्प्रदायों का विकास होता गया। अरबों एवं तुर्को के आने के साथ भारतीय समाज में एक नये मुस्लिम वर्ग ने प्रवेश किया और धर्म परिवर्त्तन के साथ भारतीय मुसलमानों की संख्या समाज में बढ़ने लगी। मध्यकालीन भारत में नये रूप में समाज का निर्माण हो रहा था जो जाति प्रथा से परे वर्ण व्यवस्था को तोड़कर अनेक उपजातियाँ के साथ विकसित हो रहा था जो मुख्यतः व्यवसाय से संबंधित हुआ करता था। इसको विकसित होने में शासकों ने भी योगदान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *चार्ल्स मेटकाफ, सत्यकेतु विद्यालय द्वारा उद्धरित, प्रा. भा .शा. व्य. श., पृ0–274–275*
2. *डब्लू. एच. मोरलैण्ड, एग्रोरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, पृ–17*
3. *राधेश्याम, पृ0–171*
4. *पी. व्ही. कार्ण, पृ0–140–41*
5. *हरिशंकर श्रीवास्तव, द्वारा मुगल शासन प्रणाली, में उद्धरित, पृ0–122*
6. *परमात्मा शरण प्रादिशिमल गर्वनमेंट, पृ0–243–245*
7. *नियाउद्दीन वर्नी–तारीख–ए–फिरोजशाही, अनु0, रिजवी तु. का. मा., पृ0–215*